2. सूरदास

भक्ति की कृष्ण काव्यधारा के अनमोल रत्न हैं। अन्य कवियों की भाँति ही इनके जन्मस्थान आदि के सम्बन्ध में मतभेद है। जनश्रुति के आधार पर, संवत् 1535 विक्रमी को दिल्ली के निकटवर्ती फरीदाबाद के सीही नामक ग्राम के ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ। लेकिन कुछ विद्वान मथुरा और आगरा के बीच स्थित रुनकता ग्राम को इनका जन्मस्थान बताते हैं। इनके पिता का नाम रामदास था जो अकबर के दरबारी गायक थे। लेकिन 'साहित्यलहरी' में इनके वंश के बारे में कहा गया कि ये चंद के वंशज हरिचंद के सबसे छोटे पुत्र थे। लेकिन मूल सत्य क्या है, ये पता नहीं।

सूर नेत्रविहीन थे यह तो निर्विवाद है। जन्मान्ध थे या बाद में हुए यह भी विवादस्पद है। इस सम्बन्ध में लोगों में किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनका मानना है कि एक बार सूर कुएँ में गिर गए थे और छह दिन तक वहीं पड़े रहे। सातवें दिन भगवान कृष्ण वहाँ प्रकट हुए और सूर को दृष्टि देकर दर्शन दिए। भगवान के दृष्टि-सम्बन्धी वर से इन्होंने लाभ उठाना नहीं चाहा, उनसे प्रार्थना की कि जिन नेत्रों से मैंने आपको देखा है उससे मैं किसी और को न देखूँ। पर आचार्य शुक्ल और डॉ श्यामसुन्दरदास इनके काव्य की उत्कृष्टता के आधार पर इन्हें जन्मान्ध नहीं मानते।

इनके आरम्भिक जीवन के विषय में केवल इतना ही ज्ञात है कि वल्लभाचार्य से दीक्षित होने से पूर्व यह संन्यासियों के साथ गऊघाट पर रहते थे और कृष्णभक्ति में विनय के पद गाते थे। वल्लभाचार्य के कहने पर सूर ने बड़ी तन्मयता से 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ' गाया जिसे सुनकर आचार्य जी ने कहा—

''जो सूर ह्वै के ऐसे घिघियात हो, कुछ लीला को पद गाओ।''

वल्लभ ने इन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित कर लिया। तत्पश्चात् सूरदास ने आचार्य की आज्ञा से श्रीनाथ जी के मन्दिर में भजन-कीर्तन करने लगे। यहाँ की गायक मण्डली में आठ भक्त गायक थे, जो 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध

Scanned with CamScanner

कहीं चिंता, कहीं उत्कंठा, कहीं उद्वेग, कहीं उपालम्भ, कहीं व्यंग्य तो कहीं ओज दिखाई देता है। वस्तुतः सूर ने मानवीय भावनाओं को कुचल देने के लिए तुले हुए वेदान्तियों एवं हठयोगियों की खिल्ली उड़ाकर गोपियों ने संयोग, वियोग, सुख-दुख के किनारों में बहते हुए मानवीय जीवन की सुंदरता एवं मधुरता को भली भाँति प्रकट किया है।

ऊधो मन नहीं दस बीस/ऊधो मन नहीं हमारे हाथ/निर्गुण कौन देस को बासी/काहे को रोकत मारग सूधो/आयो घाऊ घोष व्योपारी /ठगौरी ब्रज न बिकै है' जैसे गोपियों के कथन उद्धव जैसे- ज्ञान, तर्क, निर्गुण, को मुँह चिढ़ाते हैं वहीं **'ब्याहो लाख, धरो दस कुबरी, अंतहि कान्ह हमारे/बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं/सखी ये छतियाँ हवै न गई है टूक'** जैसे कथन गोपियों के प्रेम-गर्व का रूप है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं "कि सूर में जितनी सहृदयता और भावुकता है उतनी वाग्विदग्धता भी" जोकि उचित ही है क्योंकि सूर की गोपियों ने अनेक स्थलों पर योग और प्रेम की तुलना भी की है। इस तुलना से वे इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि योग किसी काम का नहीं है। यह तो कड़वी ककड़ी है। इस योग को वही अपना सकता है जिसके मन चकरी हो **'यह जोग खारो कूप को पानी/बिन जल सूखो सागर'** से ज्यादा कुछ नहीं है। रामचन्द्र शुक्ल आगे चलकर गोपियों की दशा के विषय में कहते हैं कि "गोपियों की वियोग दशा का जो धारा प्रवाह वर्णन है उसका तो कहना ही क्या है? न जाने कितनी मानसिक दशाओं का संचार उसके भीतर है कौन गिन सकता है? इस दृष्टि से यदि सूरदास को रस-सागर कहें तो बेखटक कह सकते हैं।" पुष्टिमार्गीय होने के कारण सूरसागर में वात्सल्य, सख्य, कांत, दास्य, शांत, विनय आदि भावों का समावेश हुआ है। सूर जहाँ वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आए वहीं श्रीकृष्ण के बालरूप और किशोर छवि का चित्रण करते अघाते नहीं हैं—

'मैया मैं नहीं माखन खायो'
'मैया! कबहुँ बढ़ैगी चोटी'
'मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो'

सूरदास का संयोग शृंगार जितना स्वाभाविक और हृदयग्राही है वियोग शृंगार उतना ही करुण और मर्मस्पर्शी है—

'अँखियाँ हरि दरसन की भूखी'

'अति मलिन भई वृषभानु कुमारी'
'देखियत कालिंदी अति कारी'

जैसे पद किसी को भी द्रवीभूत करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं।

सूरदास ने ब्रजकिशोर की उपासना ब्रजभाषा में की जिससे भाव और भाषा का सुंदर सामंजस्य देखा जा सकता है। सूर के काव्य के भाव पक्ष के साथ-साथ कला पक्ष को सुंदर रूप दिया है। भावों की गंभीरता गीतिकाव्य में ढलकर सरस बन गयी है। सूर की भाषा में शब्द इतने सरल और सरस हैं कि गीत के भाव सहज ही में व्यक्त होकर पाठक को रसभीना कर देते हैं। भाषा की चित्रात्मकता, सरसता, नाटकीयता, लाक्षणिकता, अलंकारिता के सौष्ठव से सूर का काव्य चमत्कृत हो उठा है।

सूर के भ्रमरगीत की भाषा में कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। सूर के सीधे मन से निकले हुए शब्दों में किसी के भी हृदय को छूने की अद्भुत शक्ति है। सूर का मूल लक्ष्य भाव सौन्दर्य का अंकन करना था अतः उनकी भाषा में अलंकार, छंद आदि इसी मूल लक्ष्य से प्रेरित हैं।

सूर द्वारा प्रयुक्त अधिकांशतः मुहावरे ब्रज प्रदेश में प्रचलित रहे हैं। उनके काव्य में घाम के दाम चलाना, इक दूजे सौंधी, जी में शूल रहना, जी पर जातु, पीव, करना जैसे मुहावरे हैं वहीं स्वारथ के सब कोउ, आपनी दूध छाँड़ि पीवै खार कूप के वारि, काकी भूख गई लाडू, जैं आवैं ते कारे, हरि नाव चलावत सूर जैसी लोकोक्तियाँ भी प्रचलित हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "सूर में चलती भाषा कोमलता है। भाषा की स्वाभाविकता में बाधा नहीं पड़ने पाई है। कहने का तात्पर्य है कि सूर की भाषा बहुत ही चलती हुई और स्वाभाविक है।"

राग-रागिनियों में आबद्ध सूर के पद और गीत उद्दाम वेगमयी हैं। इसलिए इनके प्रभाव को कहा गया है।

'किधौं सूर को पद लग्यो, किधौं सूर की पीर'

Scanned with CamScanner

हैं। इनमें सूर का स्थान सर्वोपरि है।

पुष्टिमार्ग की उपासना और सेवा-प्रणाली का अनुसरण करते हुए सूर ने जीवन-पर्यन्त पद रचना की। इनका देहावसान पारसोली गाँव में संवत् 1640 विक्रमी में हुआ। इनकी मृत्यु पर गोस्वामी विट्ठलनाथ ने शोकातुर होकर कहा—

''पुष्टिमारग को जहाज जात है, जो जाको कछु लेना हो सो लेय।''

सूरदास बचपन से ही अपने गुणों, संस्कारों और विद्याओं के ज्ञाता थे। अतः इनकी ख्याति महात्मा और गायक रूप में थी। सूरदास ने तीन ग्रंथ लिखे–सूरसारावली, सूरसागर और साहित्य लहरी।

'सूरसारावली' सूरसागर के पदों का सार माना जाता है जबकि यह एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। 'साहित्यलहरी' में नायक-नायिका भेद, और अलंकार निरूपण के पद है।

'सूरसागर' ही सूरदास को उनकी पहचान दिलाता है सूरसागर में भी 'भ्रमरगीत' सूरदास की मौलिक उद्‌भावना है वस्तुतः यही सम्पूर्ण सूरसागर की आत्मा है। जिसका आधार भागवत का दशम स्कंध है। सूर ने भ्रमरगीत में अपनी मौलिकता का पूर्ण परिचय दिया है। गोपियों के प्रेम की अनन्यता और उद्धव की ज्ञान-योग प्रियता दोनों को समानान्तर रखकर सूर ने ज्ञानयोग पर प्रेमयोग की, निर्गुण पर सगुण की, साधना पर भक्ति की, बुद्धि पर हृदय की, तर्क पर भावना की विजय दिखाई है। गोपियों के लिए कृष्ण से भी बड़ा कृष्ण का प्रेम है। वे तो प्रेम की महत्ता के बारे में कहती है–

''प्रेम प्रेम तैं होइ, प्रेम तैं पारहिं जइयै।
प्रेम बंध्यों संसार प्रेम परमारथ लहियै।
सोचौं निहचै प्रेम कौ जीवन मुक्ति रसाल।
एकै निहचै प्रेम कौ जबै मिलै गोपाल।''

सूर की गोपियों और उद्धव के बीच हुआ प्रसंग नाटकीय हो उठा है। गोपियाँ उद्धव के कृत्य की पाती पाकर कुछ कह नहीं पाती हैं, बस रो देती हैं–

''निरखत अंक स्याम सुंदर के बार बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम स्याम जू की पाती।''

अश्रुजल से पत्र भी श्याममयी हो गया। अमूर्त को भी मूर्तिमान करने की ताकत प्रेम में हैं। गोपी प्रसंग में कहीं अमर्ष, कहीं उत्साह, कहीं, भर्तसना, कहीं आशंका, कहीं रति, कहीं आशा, कहीं निराशा, कहीं दुख, कहीं सुख,

Scanned with CamScanner